

मीमांसा दर्शन की संक्षिप्त विवेचना

मीमांसा दर्शन हिन्दुओं के छः दर्शनों में से एक है। इस शास्त्र को 'पूर्वमीमांसा' और वेदान्त को 'उत्तरमीमांसा' भी कहा जाता है। पूर्वमीमांसा में धर्म का विचार है और उत्तरमीमांसा में ब्रह्म का। अतः पूर्वमीमांसा को धर्ममीमांसा और उत्तर मीमांसा को ब्रह्ममीमांसा भी कहा जाता है। जैमिनि मुनि द्वारा रचित सूत्र से मीमांसा को 'जैमिनीय धर्ममीमांसा' कहा जाता है।

पक्ष-प्रतिपक्ष को लेकर वेदवाक्यों के निर्णीत अर्थ के विचार का नाम मीमांसा है। उक्त विचार पूर्व आर्य परंपरा से चला आया है। किंतु आज से प्रायः सवा पाँच हजार वर्ष पूर्व सामवेद के आचार्य कृष्ण द्वैपायन के शिष्य ने उसे सूत्रबद्ध किया। सूत्रों में पूर्व पक्ष और सिद्धान्त के रूप में बादरायण, बादरि, आत्रेय, आश्वमथ्य, आलेखन, ऐतिशायन, कामुकायन, कार्ष्णाजिनि और लाबुकायन महर्षियों का उल्लेख मिलता है, जिसका विस्तृत विवेचन सूत्रों के भाष्य और वार्तिक में किया गया है, जिनसे सहस्राधिकरण हो गए हैं।

जर्मन विद्वान मैक्समूलर का कहना है कि - "यह दर्शन शास्त्र कोटि में नहीं आ सकता, क्योंकि इसमें धर्मानुष्ठान का ही विवेचन किया गया है। इसमें जीव, ईश्वर, बन्ध, मोक्ष और उनके साधनों का कहीं भी विवेचन नहीं है।"

मैक्समूलर मत के पक्षपाती कुछ भारतीय विद्वान् भी इसे दर्शन शास्त्र कहने में संकोच करते हैं, क्योंकि न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और वेदान्त में जिस प्रकार तत् तत् प्रकरणों

में प्रमाण और प्रमेयों के द्वारा आत्मा-अनात्मा, बन्ध-मोक्ष आदि का मुख्य रूप से विवेचन मिलता है, वैसा मीमांसा दर्शन के सूत्र, भाष्य और वार्तिक आदि में दृष्टिगोचर नहीं होता।

उपर्युक्त विचारकों ने स्थूल बुद्धि से ग्रंथ का अध्ययन कर अपने विचार व्यक्त किए हैं। फिर भी स्पष्ट है कि मीमांसा दर्शन ही सभी दर्शनों का सहयोगी कारण है। जैमिनि ने इन विषयों का बीज रूप से अपने सूत्रों में उपन्यास किया है "सत्संप्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियणां बुद्धि जन्म तत् प्रत्यक्षम्" (जै.ध.मी.सू. १.१.४) चतुर्थ सूत्र में दो शब्द आए हैं - पुरुष और बुद्धि। पुरुष शब्द से "आत्मा" ही विवक्षित है। यह अर्थ कुमारिल भट्ट ने "भाट्टदीपिका" में लिखा है। बुद्धि शब्द से ज्ञान, (प्रमिति) प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण अर्थ को व्यक्त किया गया है।

वृत्तिकार ने "तस्य निमित्त परीष्टिः" पर्यन्त तीन सूत्रों में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रमाणों का सपरिकर विशद विवेचन तथा औत्पत्तिक सूत्र में आत्मवाद का विशेष विवेचन अपने व्याख्यान में किया है। इसी का विश्लेषण शाबर भाष्य, श्लोक वार्तिक, शास्त्रदीपिका, भाट्ट चिन्तामणि आदि ग्रंथों में किया गया है जिसमें प्रमाण और प्रमेयों का भेद, बंध, मोक्ष और उनके साधनों का भी विवेचन है।

मीमांसा दर्शन में भारतवर्ष के मुख्य प्राणधन धर्म का वर्णाश्रम व्यवस्था, आधानादि, अश्वमेधांत आदि विचारों का विवेचन किया गया है।

प्रायः विश्व में ज्ञानी और विरक्त पुरुष सर्वत्र होते आए हैं, किंतु धर्माचरण के साक्षात् फलवेत्ता और कर्मकांड के प्रकांड विद्वान् भारतवर्ष में ही हुए हैं।

इनमें कात्यायन, आश्वलायन, आपस्तम्ब, बोधायन, गौतम आदि महर्षियों के ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। (कर्मकांड के विद्वानों के लिए उपनिषदों में महाशाला; श्रोत्रियाः, यह विशेषण प्राप्त होता है)। भारतीय कर्मकांड सिद्धांत का प्रतिदान और समर्थन इसी दर्शन में प्राप्त होता है। डॉ. कुंनन् राजा ने "बृहती" के द्वितीय संस्करण की भूमिका में इसका समुचित रूप से निरूपण किया है। यद्यपि कणाद मुनि कृत वैशेषिक दर्शन में धर्म का नामतः उल्लेख प्राप्त होता है तथापि उसके विषय में आगे विचार नहीं किया गया है।

मीमांसा दर्शन सोलह अध्यायों का है, जिसमें बारह अध्याय क्रमबद्ध हैं। शास्त्रसंगति, अध्यायसंगति, पादसंगति और अधिकारसंगतियों से सुसंबद्ध है। इन बारह अध्यायों में जो छूट गया है, उसका निरूपण शेष चार अध्यायों में किया गया है जो 'संकर्षकांड' के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें देवता के अधिकार का विवेचन किया गया है। अतः उसे 'देवता कांड' भी कहते हैं अथवा द्वादश अध्यायों का परिशिष्ट भी कह सकते हैं।

भास्कर राय दीक्षित ने संकर्षण कांड की व्याख्या के अंत में लिखा है कि षोडशाध्यायी मीमांसा के रहते हुए भी पठनपाठन मध्य काल में द्वादशाध्याय का ही होता था।

जिस तरह चतुष्पदा गायत्री के रहने पर भी विद्वान् वर्ग त्रिपदा गायत्री को ही जपते हैं, उसी तरह वर्तमान काल में द्वादशाध्यायी मीमांसा का ही अध्ययन अध्यापन प्रचलित है।

कुछ विद्वानों के अनुसार मीमांसा के बिना वाक्यार्थ का निर्णय करना कठिन है, क्योंकि अमुक वाक्य उपस्थित अर्थ में प्रमाण है अथवा अन्य अर्थ में, इस विचार के निर्णय में जो निष्कर्ष आता है उसे मीमांसा कहा गया है, किंतु यहाँ मीमांसा शब्द का अर्थ दर्शन से है।

धर्मज्ञान के लिए परस्पर विरोध रहित वेदमंत्रों के अर्थों के विचार का नाम मीमांसा है। और विचारपूर्वक प्राप्त धर्मज्ञान मीमांसा का फल है। यही बात जैमिनि ने अपने मीमांसा दर्शन में कही है - अथातो धर्म जिज्ञासा। 1.1.1। कुमारिल भट्ट ने इसे इस प्रकार वर्णन किया है -

धर्माख्यं विषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्।

आगे वाक्यार्थ निर्णयोपयोगी सहस्रों न्यायों का वर्णन किया गया है। यहाँ तक छह अध्यायों का संक्षिप्त विषयनिर्देश किया गया।

इस दर्शन में प्राप्ताप्राप्त विवेक न्याय से, अथवा अदग्ध दहन न्याय से उद्देश्य विधेय भाव का विचार कर वेद-वाक्यार्थ-निर्णय से कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान होता है। इसलिए धर्मज्ञान ही मीमांसा दर्शन का प्रयोजन है। इस दर्शन में धर्मविचार से उपक्रम (प्रारंभ) है। व्याकरण के लिए "पदशास्त्र", वैशेषिक न्याय के लिए "प्रमाणशास्त्र" और मीमांसा के लिए "वाक्यशास्त्र" का प्रयोग संस्कृत साहित्य में होता है। इस शास्त्र में ही धर्मविचार की चर्चा है। भारतीय जनता का मुख्य उद्देश्य धर्मानुष्ठान है। अनुष्ठान फल के बिना नहीं हो सकता और फलसाधनता भी साधन सामग्री के बिना नहीं हो सकती। अतः संक्षेप में साधन का भी विवेचन किया जाता है।

अनुष्ठान के पूर्व धर्म का लक्षण, प्रमाण और साधन फल जानना आवश्यक है। इस शास्त्र में साधन, अंग और शेष, ये तीनों पर्यायवाचक शब्द हैं। ऐसे ही साध्य, शेषी और अंगी ये तीनों पर्यायवाची हैं। उदाहरण के लिए स्वर्गप्राप्ति के निमित्त दर्श पूर्णमास का अनुष्ठान यदि करना हो तो उसमें दर्श और पूर्णमास अंगी होंगे और प्रयाज आदि अंग होंगे। दर्श याग

अमावस्या तिथि को और पूर्णमास याग पूर्णिमा तिथि को होता है।) इसमें अंगी प्रधान अंग का प्रयोजक है और अंग प्रयोज्य है। इस प्रकार धर्मप्राप्ति के साधनों को जानकर अनुष्ठान के लिए पौर्वापर्य का भी ज्ञान अपेक्षित है एवं फल के लिए अनुष्ठेय अग्नि होत्रादि कर्मों के प्रकरण में पूर्वांग और उत्तरांग साधनों का भी विवेचन है, जिनके लिए "प्रकृति" शब्द का प्रयोग होता है। किंतु सौर्यादि कर्मके सन्निधि में अंग का पाठ नहीं है। उस स्थल पर आकांक्षा के उदय होने पर दर्श पूर्णमास में प्रतिपादित अंगों को लेना होता है जिसे अतिदेश कहते हैं।

00000